राजा बहादुर गिरिवर प्रसाद नारायण सिंह

बनाम

दुखु लाल दास एवं अन्य

20 *अप्रैल*, 1967

[के. एन. वांचू, मुख्य न्यायाधीश, वी. भार्गव और जी.के. मित्तर, न्यायमूर्तिगण]

बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (1950 की संख्या 30), धारा 3 और 4 – आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित संपत्ति निहित करने की अधिसूचना, समाचार पत्रों में नहीं। प्रभाव – निहित होने की तिथि।

वादी-उत्तरदाता ने उत्तरदाता 1-अपीलकर्ता से प्रतिवादी 1 की संपत्ति में कुछ अधिकारों का पट्टा प्राप्त किया और उसे पट्टा राशि का भुगतान किया। राजपत्र में प्रकाशित एक अधिसूचना द्वारा, बिहार भूमि सुधार अधिनियम के तहत प्रतिवादी 1-अपीलकर्ता की संपत्ति प्रतिवादी 2-राज्य को हस्तांतरित कर दी गई। इसके बाद, राज्य ने वादी से पट्टा राशि का भुगतान करने को कहा, जिसका भुगतान वादी ने विरोध सहित किया। वादी ने दोनों प्रतिवादियों में से किसी एक से पट्टा राशि की वापसी का दावा करते हुए मुकदमा दायर किया, जिसका भुगतान उसे मजबूरी में करना पड़ा था। विचारण न्यायालय ने राज्य के खिलाफ मुकदमा पारित किया। राज्य ने अपील की, और उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी 1 को राशि वापस करने के लिए उत्तरदायी ठहराया और राज्य के खिलाफ दिए गए फैसले को अपास्त कर दिया। अपील में, इस न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: प्रतिवादी 1 को पट्टे की राशि वसूलने का अधिकार था, न कि राज्य को।

अधिनियम की धारा 3(2) के अनुसार, जब अधिसूचना आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित हुई थी, तब दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशन नहीं हुआ था। इस चूक के कारण धारा 3(2) के अनिवार्य प्रावधान का पालन नहीं हुआ, जिसके तहत कम से कम दो

समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशन आवश्यक था। परिणामस्वरूप, अधिनियम की धारा 5(क) उस समय लागू नहीं हुई और फलस्वरूप, प्रतिवादी संख्या 1 स्वामी बना रहा और उस समय इस अधिसूचना द्वारा संपत्ति में उसके अधिकारों से वंचित नहीं किया गया। इस मामले के अभिलेखों में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला जिससे यह पता चले कि अधिसूचना बाद में भी किसी समाचार पत्र में प्रकाशित हुई थी; लेकिन विचारण न्यायालय में, मामला प्रतिवादी 1 द्वारा स्वयं स्वीकार किए जाने के आधार पर चला कि उसे बाद की तिथि में बेदखल किया गया था और उसी बाद की तिथि से उसके स्वामित्व अधिकार समाप्त हो गए थे। परिणामस्वरूप, उन्हें संबंधित पूर्व तिथि पर वादी को पट्टा देने का पूर्ण अधिकार था और उस पट्टे के तहत अधिकारों का प्रयोग वादी द्वारा उस अवधि के दौरान किया गया था जब प्रतिवादी 1 तब भी स्वामी था। [772 एच-773 डी]

अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) में कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में अधिसूचना प्रकाशित करने का निर्देश अनिवार्य था, न कि केवल निर्देशात्मक। इस अधिसूचना का व्यापक प्रभाव पड़ा। इसने संपत्ति के स्वामी को उसके निहित अधिकारों से वंचित कर दिया और उन अधिकारों को राज्य सरकार को सौंप दिया। अधिकारों में यह परिवर्तन स्वामी की व्यक्तिगत संपत्तियों के संबंध में जारी अधिसूचनाओं द्वारा किया जाना था और ऐसा प्रतीत होता है कि अधिसूचना के महत्व के कारण ही विधायिका ने इसे केवल राजपत्र में प्रकाशित करना पर्याप्त नहीं समझा। यदि विधानमंडल का इरादा यह था कि अधिनियम की धारा 4 (क) के प्रावधानों को लागू करने के लिए दो समाचार पत्रों में प्रकाशन को ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए, तो यह इरादा धारा 4 के मुख्य भाग में ही स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता था कि धारा 3 की उपधारा (1) के तहत अधिसूचना के आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन पर परिणाम होंगे। इस धारा में "प्रकाशन" शब्द को विशेषण "आधिकारिक राजपत्र में" से योग्य न बनाकर, विधानमंडल ने स्पष्ट रूप से यह संकेत दिया है कि अधिसूचना को अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) में निर्धारित तरीके के अनुसार

पूरी तरह से प्रकाशित किया जाना चाहिए। जहां तक उत्तराधिकार की तिथि का संबंध है, इसकी परिभाषा स्वाभाविक रूप से उपधारा (2) की धारा 3 में परिकल्पित पांच न्यूनतम प्रकाशनों पर निर्भर नहीं हो सकती थी। यह निश्चित नहीं था कि समाचार पत्रों के उन दो अंकों में से किसी एक में अधिसूचना का प्रकाशन उसी तिथि को होगा जिस तिथि को आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित होती है, और न ही यह निश्चित था कि अन्य समाचार पत्र के दो अंकों में भी अधिसूचना उसी तिथि को प्रकाशित होगी। इन परिस्थितियों में, राज्य सरकार में संपदा के उत्तराधिकार के प्रभावी होने की सटीक तिथि निर्धारित करना स्पष्ट रूप से आवश्यक था। यही कारण है कि उत्तराधिकार की तिथि को अधिनियम की धारा 2 (एच) में परिभाषित किया गया है और इसमें यह निर्धारित किया गया है कि उत्तराधिकार की तिथि आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तिथि होगी। अतः, यह परिभाषा इसलिए शामिल की गई ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रत्येक मामले में अधिकार प्राप्त होने की तिथि बिना किसी अनिश्चितता या अस्पष्टता के निर्धारित की जा सके और अधिकार तभी लागू होगा जब अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) के अनुसार अधिसूचना कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशित हो जाए। [764 एफ-एच; 765 एफ-766 ई]

यह तथ्य कि उपधारा (2) की धारा 3 में संशोधन को पूर्वव्यापी नहीं बनाया गया, केवल इस निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि यद्यपि विधानमंडल ने संशोधन अधिनियम पारित होने के बाद समाचार पत्रों में अधिसूचना के प्रकाशन की आवश्यकता को समाप्त कर दिया, लेकिन उसने उन अधिसूचनाओं को पूर्वव्यापी रूप से प्रभावी नहीं बनाया, जिनके संबंध में दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशन न करके उपधारा (2) की आवश्यकताओं का अनुपालन नहीं किया गया था।[770 ई-जी]

रज़ा बुलंद शुगर कंपनी लिमिटेड बनाम नगर निगम बोर्ड, रामपुर, [1965] 1 एस.सी.आर. 970 का संदर्भ दिया गया।

रबाती रंजन और अन्य बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1953 पटना 121, अस्वीकृत।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: वर्ष 1964 की दीवानी अपील संख्या 911

पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 1 नवंबर, 1961 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील, मूल डिक्री संख्या 398/1957 के विरुद्ध।

अपीलकर्ता की ओर से *बी. सेन और यू. पी. सिंह* उपस्थित हुए।

उत्तरदाता संख्या 1-9 की ओर से *बी. आर. एल. अयंगर और एस. एन. मुखर्जी* ।

उत्तरदाता संख्या 10 की ओर से *डी. पी. सिंह और के. एम. के. नायर*।

न्यायालय का निर्णय जिनके द्वारा सुनाया गया

भार्गव, न्यायमूर्ति। यह अपील बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (1950 की संख्या 30) (जिसे आगे "अधिनियम" कहा गया है) के प्रावधानों की व्याख्या का प्रश्न उठाती है, जो शुरू में 11 सितंबर, 1950 को लागू हुआ था। 12 मार्च, 1951 को पटना उच्च न्यायालय ने इस अधिनियम को इस आधार पर अमान्य घोषित कर दिया कि इसके प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करते हैं। 18 जून, 1951 को संविधान का प्रथम संशोधन अधिनियम लागू हुआ। इसके बाद, 6 नवंबर, 1951 को अधिनियम की धारा 3(1) के तहत प्रतिवादी संख्या 1 (इस अपील में अपीलकर्ता) की संपत्ति के संबंध में एक अधिसूचना जारी की गई, जिसमें यह घोषित किया गया कि प्रतिवादी संख्या 1 की संपत्तियां राज्य को हस्तांतरित हो गई हैं और राज्य में निहित हो गई हैं। यह अधिसूचना 14 नवंबर, 1951 को बिहार के आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित हुई थी। यह विवादित है कि क्या उस समय यह किसी समाचार पत्र में भी प्रकाशित हुई थी। हालांकि, प्रतिवादी संख्या 1 का संपत्ति पर कब्जा बना रहा। 12 अप्रैल, 1952 को प्रतिवादी संख्या 1 ने वादी (जिसे अब इस अपील में उत्तरदाता 1 से 9 द्वारा पुनः प्रस्तुत किया गया है) को प्रतिवादी संख्या 1 की संपत्ति में स्थित भूमि में बीड़ी के पत्तों के संग्रह के लिए तीन साल का पट्टा दिया। यह सर्वविदित है कि बीड़ी के पत्तों का संग्रह 1 मई से शुरू होकर लगभग 15 जून को समाप्त होता है, इसलिए वर्ष 1952 के लिए वादी को 1-5-1952 और 15-5-1952 के बीच बीड़ी के पत्तों का संग्रह करना

था। पट्टे की शर्तों के तहत, वादी को 2000 रुपये की राशि का भुगतान करना था। प्रतिवादी संख्या 1 को प्रतिवर्ष 22,500/- रुपये का भुगतान करना था और इसके अतिरिक्त, 7,500/- रुपये की राशि सुरक्षा के रूप में जमा करनी थी। वर्ष 1952 के लिए, वादी ने प्रतिवादी संख्या 1 को 30,000/- रुपये का भुगतान किया। 5 मई, 1952 को, इस न्यायालय ने अधिनियम को वैध और संवैधानिक घोषित किया। 12 जून, 1952 को 12 अप्रैल, 1952 की लीज़ पंजीकृत की गई। ठीक अगले दिन, 13 जून, 1952 को, राज्य सरकार उत्तरदाता संख्या 2, (इस अपील में उत्तरदाता संख्या 10) द्वारा एक घोषणा जारी की गई, जिसमें कहा गया कि अधिनियम के तहत प्रतिवादी संख्या 1 की संपत्तियों को सरकार द्वारा अधिग्रहित कर लिया गया है। 21 नवंबर, 1952 को, प्रतिवादी संख्या 2 ने वादी को कारण बताओ नोटिस दिया कि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा उसे दी गई लीज़ को रद्द क्यों नहीं किया जाना चाहिए। 18 अप्रैल, 1953 को, प्रतिवादी संख्या 2 ने वादी को सूचित किया कि एक मौजूदा लीज़धारक के रूप में वह सरकार के अंतिम आदेश पारित होने तक संपत्ति पर कब्जा बनाए रख सकता है। 2 मई, 1953 को प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा वादी को एक और नोटिस दिया गया कि जब तक वादी पिछले वर्ष 1952 का पट्टा शुल्क उत्तरदाता संख्या 2 को नहीं चुकाता, तब तक उसे वर्ष 1953 का पट्टा नहीं मिलेगा। इसके बाद, वादी ने विरोध जताते हुए वर्ष 1952 और 1953 दोनों के लिए पट्टा शुल्क प्रतिवादी संख्या 2 को चुका दिया। 4 जून, 1954 को बिहार भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम 20, 1954 (जिसे आगे "संशोधन अधिनियम" कहा गया है) लागू हुआ। इस संशोधन का प्रभाव आगे देखा जाएगा। 31 जनवरी, 1955 को वादी ने प्रतिवादी संख्या 1 या प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध दो राशियों - 7,500 रुपये (जो उसने सुरक्षा के रूप में जमा किए थे) और 22,500 रुपये जो उसे दोनों प्रतिवादियों को देने के लिए मजबूर किया गया था। 28 जून, 1957 को विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 1 के विरुद्ध केवल 7,500 रुपये और प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध 22,500 रुपये की राशि के लिए मुकदमा डिक्री किया। 14 अक्टूबर, 1957 को प्रतिवादी संख्या 2 ने उच्च न्यायालय में अपील

दायर की और 13 जून, 1958 को प्रतिवादी संख्या 1 और वादी दोनों की ओर से प्रति-आपत्तियां दायर की गईं। उच्च न्यायालय ने 1 नवंबर, 1961 को अपील पर फैसला सुनाते हुए कहा कि प्रतिवादी संख्या 1 के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं था जिसके तहत वह वादी को पट्टा दे सके और इसलिए वह न केवल सुरक्षा के रूप में दी गई 7,500 रुपये की राशि बल्कि 22,500 रुपये की राशि भी वापस करने के लिए उत्तरदायी है, जो उसने वादी से वर्ष 1952 के लिए पट्टे के रूप में वसूल की थी। विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध 22,500 रुपये के आदेश को रद्द कर दिया गया, क्योंकि प्रतिवादी संख्या 2 को वर्ष 1952 के लिए भी पट्टे की राशि वसूलने का हकदार माना गया था। इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 1 ने उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त प्रमाण पत्र के आधार पर इस अपील में इस न्यायालय के समक्ष अपील दायर की है।

इस अपील में प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि वे अब उस डिक्री को चुनौती नहीं दे रहे हैं जिसमें वादी को 7,500 रुपये की जमानत राशि वापस करने का निर्देश दिया गया है। यह स्वीकार किया गया कि कम से कम 13 जून, 1952 से प्रतिवादी संख्या 1 संपत्ति पर स्वामित्व का दावा नहीं कर रहा था, और चूंकि उसे वादी से वर्ष 1952 के लिए 22,500 रुपये का पट्टा प्राप्त हो चुका था, इसलिए जमानत राशि की अब आवश्यकता नहीं थी। इसलिए, इस अपील में हम केवल इस प्रश्न से संबंधित हैं कि क्या वर्ष 1952 के लिए पट्टे की राशि वादी द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 या प्रतिवादी संख्या 2 को देय थी, और यह प्रश्न स्पष्ट रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि क्या प्रतिवादी संख्या 1 12 अप्रैल, 1952 को वादी को पट्टा देते समय संपत्ति का स्वामी था और 13 जून, 1952 तक स्वामी बना रहा, या क्या वह 14 नवंबर, 1951 से संपत्ति का स्वामी नहीं रहा था और उस तिथि से संपत्ति प्रतिवादी संख्या 2 के नाम हो गई थी। इस पहलू पर, प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा यह तर्क देने के लिए कई दलीलें दी गईं कि वह संपत्ति का मालिक बना रहा और 14 नवंबर, 1951 से उसे संपत्ति से वंचित नहीं किया गया था; लेकिन हमें केवल एक ही आधार

पर विचार करने की आवश्यकता है जो हमारे विचार से प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में मामले को निर्णायक बनाता है।

जिस आधार पर हमें लगता है कि प्रतिवादी संख्या 1 को सफलता मिलनी चाहिए, वह यह है कि जब प्रतिवादी संख्या 2 ने 6 नवंबर, 1951 को घोषणा जारी की, तो वह घोषणा केवल बिहार के आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना के रूप में प्रकाशित हुई थी, न कि दो अलग-अलग समाचार पत्रों के दो अंकों में। इस चूक के प्रभाव को समझने के लिए, अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों और संशोधन अधिनियम द्वारा किए गए बाद के संशोधनों के प्रभाव को स्पष्ट किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 3 और धारा 4 का वह भाग जो इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, जैसा कि वे मूल रूप से वर्ष 1950 में अधिनियमित किए गए थे, नीचे दिए गए हैं:

> "3. राज्य में किसी संपदा या पट्टे को निहित करने की अधिसूचना (1) राज्य सरकार समय-समय पर अधिसूचना द्वारा यह घोषित कर सकती है कि अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी स्वामी या पट्टेदार की संपदा या पट्टे राज्य को हस्तांतरित हो गए हैं और राज्य में निहित हो गए हैं।
>
> (2) उप-धारा (1) में निर्दिष्ट अधिसूचना आधिकारिक राजपत्र और बिहार राज्य में प्रसारित होने वाले कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशित की जाएगी, और ऐसी अधिसूचना की एक प्रति, पावती सहित, भूमि पंजीकरण अधिनियम, 1876 (बेन. अधिनियम VIII, 1876) के तहत रखे गए राजस्व-भुगतान करने वाली या राजस्व मुक्त भूमि के सामान्य रजिस्टरों में दर्ज संपत्ति के स्वामी को, या यदि संपत्ति ऐसे किसी रजिस्टर में दर्ज नहीं है, और काश्तकारों के मामले में, संपत्ति के स्वामी को या काश्तकार को भेजी जाएगी, यदि समाहर्ता के पास ऐसे स्वामियों या काश्तकारों की सूची उनके पतों सहित उपलब्ध है, और ऐसी डाक द्वारा भेजी गई अधिसूचना को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए ऐसे स्वामी पर अधिसूचना की पर्याप्त तामील

माना जाएगा, या यदि ऐसी अधिसूचना काश्तकार को डाक द्वारा भेजी जाती है, तो ऐसे काश्तकार पर अधिसूचना की पर्याप्त तामील माना जाएगा।

(3) यदि ऐसी अधिसूचना डाक द्वारा भेजी जाती है, तो उपधारा (2) में दिए गए तरीके से ऐसी अधिसूचना का प्रकाशन और डाक द्वारा चिपकाना, उन सभी मालिकों या पट्टेदारों को घोषणा की सूचना मिलने का निर्णायक प्रमाण होगा जिनके हित अधिसूचना से प्रभावित होते हैं।"

"4. किसी संपदा या कार्यकाल के राज्य में निहित होने के परिणाम- किसी अन्य कानून में या किसी अनुबंध में निहित किसी भी बात के बावजूद, धारा 3 की उपधारा (1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन पर, निम्नलिखित परिणाम होंगे, अर्थात्:-

(क) इस अध्याय के अनुवर्ती प्रावधानों के अधीन रहते हुए, ऐसी संपदा या पट्टेदारी, जिसमें किसी भवन या भवन के भाग में स्वामी या पट्टेदार का हित शामिल है, जो ऐसी संपदा या पट्टेदारी में शामिल है और जिसका उपयोग मुख्य रूप से कार्यालय या कचहरी के रूप में ऐसी संपदा या पट्टेदारी के किराए की वसूली के लिए किया जाता है, तथा वृक्षों, वनों, मत्स्य पालन, जलकार, हाट, बाज़ार और घाटों में उसका हित तथा अन्य सभी सैरती हित, तथा सभी उप-मिट्टी में उसका हित, जिसमें खानों और खनिजों में कोई भी अधिकार शामिल है, चाहे वे खोजे गए हों या नहीं खोजे गए हों, चाहे उन पर काम किया जा रहा हो या नहीं, खानों और खनिजों के पट्टेदार के ऐसे अधिकार भी शामिल हैं, जो ऐसी संपदा या पट्टेदारी में शामिल हैं (रैयतों या अधीनस्थ रैयतों के हितों को छोड़कर), निहित होने की तिथि से राज्य में पूर्णतः निहित हो जाएगा, सभी भारों से मुक्त होकर, और ऐसे स्वामी या पट्टेदार का ऐसी संपदा या पट्टेदारी में कोई हित नहीं रहेगा, सिवाय उन हितों के जो इस अधिनियम के प्रावधानों द्वारा स्पष्ट रूप से सुरक्षित किए गए हैं।"

यह ध्यान देने योग्य है कि अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत, खंड (क) में उल्लिखित परिणाम केवल "धारा 3 की उपधारा (1) के अंतर्गत अधिसूचना के प्रकाशन पर" ही सुनिश्चित होने थे। जब तक ऐसा प्रकाशन नहीं होता, संपत्ति राज्य सरकार में निहित नहीं होती थी। धारा 3 (1) में निस्संदेह यह प्रावधान है कि जारी की जाने वाली अधिसूचना की विषयवस्तु में ही यह उल्लेख होगा कि अधिसूचना में निर्दिष्ट संबंधित स्वामी की संपत्तियां राज्य को हस्तांतरित हो गई हैं और राज्य में निहित हो गई हैं। हालांकि, ऐसी अधिसूचना जारी करने मात्र से संपत्ति राज्य में निहित नहीं हो जाती थी। निहित होना अधिनियम की धारा 4 के खंड (क) द्वारा सुनिश्चित किया गया था, और वह खंड केवल धारा 3 की उपधारा (1) के अंतर्गत अधिसूचना के प्रकाशन पर ही लागू हो सकता था। अधिसूचना के प्रकाशन का तरीका धारा 3 की उपधारा (2) में निर्धारित है। नवंबर 1951 में संबंधित समय पर यह आवश्यक था कि अधिसूचना को आधिकारिक राजपत्र में और बिहार राज्य में प्रसारित होने वाले कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशित किया जाए। इस प्रकार, अधिसूचना को न केवल आधिकारिक राजपत्र में, बल्कि कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में भी प्रकाशित करने का निर्देश था।

प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने हमारे समक्ष यह तर्क दिया कि दो समाचार पत्रों में अधिसूचना प्रकाशित करने का निर्देश केवल निर्देशात्मक है, अनिवार्य नहीं, और परिणामस्वरूप, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना का प्रकाशन मात्र ही अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत आवश्यक अधिसूचना का प्रकाशन माना जाना चाहिए। उनके द्वारा दिया गया तर्क सही है कि धारा 3 (2) में "शैल" शब्द का मात्र प्रयोग किसी कानून में किसी विशेष निर्देश को अनिवार्य नहीं बनाता है, और ऐसे अवसर भी आए हैं जब यह माना गया है कि यद्यपि विधायिका द्वारा "शैल" शब्द का प्रयोग किया गया है, विधायिका द्वारा दिया गया निर्देश केवल निर्देशात्मक है। हालांकि, वर्तमान मामले में, हम इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते कि अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) में दो समाचार पत्रों के कम से कम दो

अंकों में अधिसूचना प्रकाशित करने का निर्देश केवल निर्देशात्मक था, अनिवार्य नहीं। इस अधिसूचना का व्यापक प्रभाव पड़ा। इसने संपत्ति के स्वामी को उसके निहित अधिकारों से वंचित कर दिया और उन अधिकारों को राज्य सरकार को सौंप दिया। अधिकारों में यह परिवर्तन स्वामी की व्यक्तिगत संपत्तियों के संबंध में जारी अधिसूचनाओं द्वारा किया जाना था और ऐसा प्रतीत होता है कि अधिसूचना के महत्व के कारण ही विधायिका ने इसे केवल राजपत्र में प्रकाशित करना पर्याप्त नहीं समझा। अतः अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) में कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशन की शर्त रखी गई थी। इस प्रावधान में विशेषण वाक्यांश "कम से कम" का प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह निर्धारित करके कि प्रकाशन कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में होना चाहिए, विधानमंडल ने स्पष्ट रूप से समाचार पत्रों में प्रकाशन के महत्व को दर्शाया। अधिसूचना के प्रकाशन के लिए कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों का उल्लेख इसलिए किया गया था ताकि यह स्पष्ट हो सके कि यह आवश्यकता अनिवार्य थी और अधिसूचना के प्रभावी होने से पहले इसे पूरा किया जाना आवश्यक था, जिसके परिणामस्वरूप संपत्ति के स्वामी के अधिकार समाप्त हो सकते थे और वे अधिकार राज्य सरकार को हस्तांतरित हो सकते थे।

इस संदर्भ में, अधिनियम की धारा 2 के खंड (एच) में निहित "निहित होने की तिथि" की परिभाषा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि "निहित होने की तिथि" का अर्थ, राज्य में निहित किसी संपत्ति या कार्यकाल के संबंध में, धारा 3 की उपधारा (1) के तहत ऐसी संपत्ति या कार्यकाल के संबंध में अधिसूचना के आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तिथि है। यह तर्क दिया गया कि चूंकि निहित होने की तिथि को केवल आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना के प्रकाशन के संदर्भ में परिभाषित किया गया है, इसलिए दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशन को अनिवार्य नहीं माना जाना चाहिए और धारा 4 के प्रावधान केवल आधिकारिक राजपत्र में निहित होने की तिथि निर्धारित करने वाली अधिसूचना के प्रकाशन पर ही संपत्ति पर लागू हो जाने चाहिए। हमें

नहीं लगता कि इस तर्क में कोई दम है। यह सही है कि संपत्ति के निहित होने की तिथि निर्धारित करने के लिए दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशन को ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्य सरकार में संपत्ति के निहित होने के लिए दो समाचार पत्रों में प्रकाशन को अनदेखा किया जा सकता है। यदि विधानमंडल का इरादा यह था कि अधिनियम की धारा 4 (क) के प्रावधानों को लागू करने के लिए दो समाचार पत्रों में प्रकाशन को ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए, तो इस इरादे को धारा 4 के मुख्य भाग में ही स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता था कि परिणाम "धारा 3 की उपधारा (1) के तहत अधिसूचना के आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन" पर लागू होंगे। इस धारा में "प्रकाशन" शब्द को विशेषण "आधिकारिक राजपत्र में" से योग्य न बनाकर, विधानमंडल ने स्पष्ट रूप से यह संकेत दिया है कि अधिसूचना को अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) में निर्धारित तरीके के अनुसार पूरी तरह से प्रकाशित किया जाना चाहिए। जहां तक अधिकार प्राप्त होने की तिथि का संबंध है, इसकी परिभाषा स्वाभाविक रूप से धारा 3 की उपधारा (2) में परिकल्पित सभी पांच न्यूनतम प्रकाशनों पर निर्भर नहीं हो सकती। अधिसूचना को आधिकारिक राजपत्र के एक अंक में प्रकाशित किया जाना था। इसे एक समाचार पत्र के दो अलग-अलग अंकों और दूसरे समाचार पत्र के दो अलग-अलग अंकों में भी प्रकाशित किया जाना था। यह अधिनियम की धारा 3 (2) द्वारा आवश्यक न्यूनतम प्रकाशन था। यह भी स्पष्ट है कि यदि किसी अधिसूचना को एक समाचार पत्र के दो अलग-अलग अंकों में प्रकाशित किया जाना है, तो वह प्रकाशन एक ही तिथि पर नहीं हो सकता। एक ही समाचार पत्र के दोनों अंक स्वाभाविक रूप से दो अलग-अलग तिथियों पर प्रकाशित होंगे। इसके अलावा, इस बात की कोई निश्चितता नहीं थी कि समाचार पत्रों के उन दोनों अंकों में से किसी एक में अधिसूचना का प्रकाशन उसी तिथि पर होगा, जिस तिथि पर अधिसूचना आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित होती है, और न ही इस बात की कोई निश्चितता हो सकती थी कि दूसरे समाचार पत्र के दोनों अंकों में भी अधिसूचना उसी तिथि पर प्रकाशित होगी।

इन परिस्थितियों में, राज्य सरकार में संपत्ति के निहित होने की सटीक तिथि निर्धारित करना स्पष्ट रूप से आवश्यक था। यही कारण है कि अधिनियम की धारा 2 (एच) में निहित होने की तिथि को परिभाषित किया गया है और इसमें यह निर्धारित किया गया है कि निहित होने की तिथि आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तिथि होगी। इसलिए, यह परिभाषा यह सुनिश्चित करने के लिए शामिल की गई थी कि प्रत्येक मामले में निहित होने की तिथि बिना किसी अनिश्चितता या अस्पष्टता के निर्धारित की जा सके। इस परिभाषा का प्रभाव यह है कि दो समाचार पत्रों के दो अंकों में अधिसूचना के प्रकाशन की तिथि चाहे जो भी हो, निहित होना आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तिथि से प्रभावी होगा। कुछ मामलों में, समाचार पत्रों के दो अंकों में अधिसूचना आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तिथि से पहले हो सकती है और कुछ मामलों में, यह प्रकाशन के बाद हो सकती है। आधिकारिक राजपत्र और समाचार पत्रों के दोनों अंकों में अधिसूचना के प्रकाशन का क्रम चाहे जो भी हो, अधिकार का हस्तांतरण आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तिथि से ही प्रभावी होगा। यदि यह समाचार पत्रों के अंकों में बाद में प्रकाशित होती है, तो अधिकार का हस्तांतरण आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तिथि से पूर्वव्यापी रूप से प्रभावी होगा; लेकिन अधिकार का हस्तांतरण तभी प्रभावी होगा जब अधिसूचना वास्तव में अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) के अनुसार कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशित हो चुकी हो।

प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने इस संबंध में, *रज़ा बुलंद शुगर कंपनी लिमिटेड बनाम "नगरपालिका बोर्ड, रामपुर* [1] मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत पर अवलम्बन किया, जहाँ उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम संख्या द्वितीय, 1916 की धारा 131 (3) के तहत, कर लगाने की कार्यवाही करते समय, बोर्ड को उपधारा (1) के तहत तैयार किए गए प्रस्तावों और उपधारा (2) के तहत तैयार किए गए नियमों के मसौदे को धारा 94 में निर्धारित तरीके से, अनुसूची III में निर्धारित प्रारूप में एक नोटिस के साथ

1 [1965] 1 एस.सी.आर. 970.

प्रकाशित करना आवश्यक था। प्रकाशन के तरीके के लिए प्रावधान करने वाली धारा 94 (3) इस प्रकार है:-

> "किसी बोर्ड द्वारा बैठक में पारित प्रत्येक प्रस्ताव को यथाशीघ्र हिंदी में प्रकाशित होने वाले स्थानीय समाचार पत्र में प्रकाशित किया जाएगा, और यदि ऐसा कोई स्थानीय समाचार पत्र उपलब्ध नहीं है, तो राज्य सरकार द्वारा सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्देशित तरीके से प्रकाशित किया जाएगा।"

उस विशेष मामले में, रामपुर नगर निगम बोर्ड, जिसने कर लगाया था, ने प्रस्तावों को हिंदी में एक उर्दू समाचार पत्र में प्रकाशित किया, जबकि राज्य सरकार द्वारा ऐसा कोई विशेष या सामान्य आदेश जारी नहीं किया गया था जिसमें यह निर्धारित किया गया हो कि प्रस्तावों को धारा 94 (3) के प्रथम भाग में दिए गए तरीके से भिन्न तरीके से प्रकाशित किया जा सकता है। इस न्यायालय ने कहा: "जैसा कि हमने पहले ही कहा है, धारा 131 (3) का सार यह है कि प्रस्तावों और मसौदा नियमों का प्रकाशन होना चाहिए ताकि कर दाताओं को उन पर आपत्ति करने का अवसर मिले, और यह प्रावधान धारा 131 (3) के प्रथम भाग में किया गया है; यह अनिवार्य है। लेकिन धारा 94 (3) द्वारा निर्धारित प्रकाशन का तरीका, जिसे हमने धारा 131 (3) का द्वितीय भाग कहा है, निर्देशात्मक प्रतीत होता है और जब तक इसका पर्याप्त रूप से पालन किया जाता है, तब तक करदाताओं को अपनी आपत्तियां उठाने का उचित अवसर प्रदान करने के लिए यह पर्याप्त होगा। अत: हमारी राय है कि धारा 131 (3) में दिए गए प्रकाशन का तरीका निर्देशात्मक है। उस निर्णय के अनुरूप यह तर्क दिया गया कि अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन का उद्देश्य संबंधित संपत्तियों के मालिकों या काश्तकारों को सूचित करना था, और यह उद्देश्य आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन द्वारा और इसके अतिरिक्त, उस प्रावधान का अनुपालन करके पूरा किया जा सकता था जिसमें अधिसूचना की एक प्रति संबंधित मालिक या काश्तकार को भेजी जानी आवश्यक थी। इस संबंध में, हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर भी दिलाया गया

कि अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) को संशोधन अधिनियम द्वारा पूर्वव्यापी रूप से संशोधित किया गया था। संशोधन अधिनियम की धारा 4 इस प्रकार है:-

4. उक्त अधिनियम (बिहार भूमि सुधार अधिनियम 1950) की धारा 3 में —

(क) उपधारा (2) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्:-

"(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिसूचना आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित की जाएगी। ऐसी अधिसूचना की एक प्रति, पावती सहित, भूमि पंजीकरण अधिनियम, 1876 के तहत रखे गए राजस्व-भुगतान करने वाली या राजस्व-मुक्त भूमि के सामान्य रजिस्टरों में दर्ज संपत्ति के स्वामी को, या यदि संपत्ति ऐसे किसी रजिस्टर में दर्ज नहीं है, और काश्तकारों के मामले में, संपत्ति के स्वामी को या काश्तकार को, यदि समाहर्ता के पास ऐसे स्वामियों या काश्तकारों की उनके पतों सहित सूची है, तो पंजीकृत डाक द्वारा भेजी जाएगी, और ऐसी डाक द्वारा भेजी गई अधिसूचना को ऐसे स्वामी पर, या यदि ऐसी अधिसूचना काश्तकार को डाक द्वारा भेजी जाती है, तो ऐसे काश्तकार पर, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए अधिसूचना की पर्याप्त तामील माना जाएगा।"

(ख) उपधारा (3) में "और डाक द्वारा भेजना" शब्द हटा दिए जाएंगे और उन्हें हमेशा के लिए हटा हुआ माना जाएगा तथा "जहां ऐसी अधिसूचना उपधारा (2) में दिए गए तरीके से डाक द्वारा भेजी जाती है" शब्दों, कोष्ठकों और अंकों के स्थान पर "राजकीय राजपत्र में" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे और उन्हें हमेशा के लिए प्रतिस्थापित माना जाएगा।"

इस धारा के खंड (ख) के द्वारा अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में संशोधन किया गया है और दो परिवर्तन किए गए हैं। इन दो परिवर्तनों का प्रभाव यह था कि धारा 3 के अंतर्गत अधिसूचना से जिनके हित प्रभावित हुए थे, उन्हें आधिकारिक राजपत्र में ऐसी

अधिसूचना के प्रकाशन मात्र से ही घोषणा की सूचना प्राप्त मानी जाएगी। यह संशोधन इस प्रकार लागू किया गया था कि इसे अधिनियम के प्रारंभ होने की तिथि से प्रभावी माना जाए, ताकि यद्यपि यह संशोधन संशोधन अधिनियम द्वारा लाया गया हो, फिर भी धारा 3 की उपधारा (3) को उसी रूप में पढ़ा जाए जैसा कि नवंबर 1951 में लागू अधिनियम में संशोधित रूप में था। इस पूर्वव्यापी संशोधन के आधार पर यह तर्क दिया गया कि आधिकारिक राजपत्र में मात्र प्रकाशन, दो समाचार पत्रों में प्रकाशन या नोटिस चिपकाने की उपेक्षा करते हुए, कानून के तहत संबंधित स्वामी या पट्टेदार को घोषणा की सूचना का निर्णायक प्रमाण बन गया था, और परिणामस्वरूप, दो समाचार पत्रों के दो अंकों में अतिरिक्त प्रकाशन अब अनिवार्य नहीं माना जा सकता था। संबंधित स्वामी या पट्टेदार को आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन द्वारा सूचना देने का उद्देश्य पूर्णतः पूर्ण हो जाने के कारण, प्रकाशन का कोई और तरीका अनिवार्य नहीं माना जाना चाहिए। यद्यपि, यह तर्क इस तथ्य को नजरअंदाज करता है कि अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अंतर्गत जारी अधिसूचना में निहित घोषणा न केवल संबंधित स्वामी या पट्टेदार के अधिकारों को प्रभावित करती है, बल्कि अन्य व्यक्तियों के अधिकारों को भी प्रभावित करती है। अधिनियम के बाद के प्रावधानों से स्पष्ट होता है कि राज्य सरकार में संपत्ति के निहित होने के परिणामस्वरूप स्वामी के सुरक्षित लेनदार अपनी सुरक्षा खो देते हैं और स्वामी द्वारा उन्हें देय ऋण की वसूली के लिए अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत कार्यवाही करने के लिए बाध्य होते हैं। इसी प्रकार, राज्य सरकार में संपत्ति के निहित होने और स्वामी के अधिकारों के हनन से स्वामी से खनन पट्टे धारण करने वाले व्यक्ति भी प्रभावित होते हैं। ऐसे प्रावधान भी हैं जिनसे पता चलता है कि अधिसूचना प्रकाशित होने और लागू होने के बाद न्यायालय अधिनियम में निर्धारित प्रकृति के मुकदमों पर कार्रवाई करेंगे या उन्हें स्वीकार करने से इनकार करेंगे। अतः अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) के अंतर्गत अधिसूचना का प्रकाशन केवल मालिकों या पट्टेदारों को सूचना देने के उद्देश्य से नहीं माना जा सकता है,

और फलस्वरूप, आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन उक्त उपधारा में निर्धारित प्रकाशन के पूर्ण उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता है।

पटना उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के *रेबती रंजन और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य*[2] के मामले में दिए गए निर्णय पर भी अवलम्बन जताया गया, जिसमें इसी कानून की व्याख्या करते हुए न्यायालय ने कहा था: "मुझे नहीं लगता कि विद्वान अधिवक्ता का तर्क सही है। मेरी राय में, धारा 3 (2) में उल्लिखित दो समाचार पत्रों में प्रकाशन और पंजीकृत डाक द्वारा संपत्ति के स्वामी को अधिसूचना की प्रति भेजना अनिवार्य प्रावधान नहीं हैं, इस अर्थ में कि इन प्रावधानों का पालन न करने से धारा 3 (1) के तहत जारी अधिसूचना अमान्य हो जाएगी। स्वामी को अधिसूचना के प्रकाशन और डाक द्वारा भेजने का प्रावधान केवल निर्देशात्मक है। विधायिका का यह इरादा नहीं हो सकता कि धारा 3 (1) के तहत जारी अधिसूचना की वैधता अधिकारियों द्वारा अधिसूचना के प्रकाशन और डाक द्वारा भेजने की बाद की कार्रवाई पर निर्भर करे।" धारा 3 (2) के तहत अधिनियमित प्रावधान का उद्देश्य केवल संबंधित स्वामियों को सूचना देना है। इस दृष्टिकोण का समर्थन धारा 3 (1) के वाक्यांश से होता है, जिसमें कहा गया है कि राज्य सरकार समय-समय पर अधिसूचना द्वारा यह घोषित कर सकती है कि "अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी स्वामी या काश्तकार की संपत्तियां या काश्तियां राज्य को हस्तांतरित हो गई हैं और राज्य में निहित हो गई हैं।" व्याकरणिक दृष्टि से "हस्तांतरित हो गई हैं और निहित हो गई हैं" वाक्यांश का अर्थ यह होना चाहिए कि अधिसूचना जारी होने की तिथि पर संपत्ति का स्वामित्व राज्य सरकार में निहित हो जाता है, धारा 3 (2) में परिकल्पित प्रकाशन और पोस्टिंग के संबंध में किसी भी प्रश्न के बावजूद यह भी ध्यान देने योग्य है कि धारा 2 (एच) "निहित होने की तिथि" को परिभाषित करती है, जिसका अर्थ राज्य में निहित संपत्ति या काश्तियों के संबंध में धारा 3 की उपधारा (1) के तहत अधिसूचना के आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तिथि है। ऐसी संपत्ति या कार्यकाल

---

2 ए.आई.आर. 1953 पटना 121.

के संबंध में हम उस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस व्याख्या को देते समय न्यायालय ने कई महत्वपूर्ण पहलुओं की अनदेखी की है। न्यायालय ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि यद्यपि धारा 3 की उपधारा (1) के अनुसार अधिसूचना में यह उल्लेख होना आवश्यक था कि संपदाएँ राज्य को हस्तांतरित हो गई हैं और राज्य में निहित हो गई हैं, फिर भी वास्तविक निहिति केवल राज्य सरकार द्वारा उस घोषणा को जारी करने का परिणाम नहीं थी। निहिति अधिनियम की धारा 4 (क) में निहित प्रावधान के परिणामस्वरूप प्रभावी हुई, जिसमें यह निर्धारित किया गया था कि यह प्रभाव अधिसूचना के प्रकाशन पर लागू होगा। इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया गया कि धारा 4 में निर्धारित प्रकाशन केवल आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन तक सीमित नहीं था। न्यायालय ने उपधारा (2) की धारा 3 में प्रयुक्त "कम से कम" शब्द के महत्व को नहीं समझा और इस तथ्य को भी नहीं माना कि इस उपधारा में केवल सामान्य शब्दों में समाचार पत्रों में प्रकाशन का निर्देश नहीं दिया गया था, बल्कि यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि अधिसूचना कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशित होनी चाहिए। यह शर्त प्रकाशन के इस तरीके पर विधायिका द्वारा दिए गए जोर को दर्शाती है। न्यायालय ने इस पहलू पर भी विचार नहीं किया कि अधिनियम की धारा 2 (एच) में "अधिकार ग्रहण करने की तिथि" की परिभाषा का उद्देश्य केवल उस तिथि को निश्चित रूप से निर्धारित करना हो सकता है जिससे स्वामी के अधिकार राज्य सरकार में निहित हो जाते हैं। इन सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद, हम मानते हैं कि किसी संपत्ति में स्वामी के अधिकारों को समाप्त करने के लिए, अधिसूचना का कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशित होना आवश्यक था।

इस संदर्भ में एक अन्य पहलू यह है कि संशोधन अधिनियम की धारा 4 ने अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) में भी संशोधन किया और इस संशोधन द्वारा कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशन की आवश्यकता को हटा दिया गया। यह महत्वपूर्ण है

कि अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) में इस विलोपन को लाने वाला यह संशोधन, धारा 3 की उपधारा (3) में किए गए संशोधनों की तरह पूर्वव्यापी नहीं बनाया गया। यदि संशोधन अधिनियम पारित करते समय विधायिका का इरादा यह था कि पहले जारी की गई अधिसूचनाएँ भी, जो दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशित किए बिना आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित की गई थीं, संपत्ति में स्वामी के अधिकारों को समाप्त करने के लिए पूर्णतः प्रभावी हों, तो इस संशोधन को भी पूर्वव्यापी बनाकर उस इरादे को आसानी से दर्शाया जा सकता था। धारा 3 की उपधारा (2) में संशोधन को पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू न किए जाने से यही निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि संशोधन अधिनियम पारित होने के बाद विधायिका ने समाचार पत्रों में अधिसूचना के प्रकाशन की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया, फिर भी उसने उन अधिसूचनाओं को पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू नहीं किया, जिनमें दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशन न होने के कारण धारा 3 की उपधारा (2) की आवश्यकताओं का अनुपालन नहीं किया गया था। इस संदर्भ में यह उल्लेख किया जा सकता है कि हमारे समक्ष मामले में, विचारण न्यायालय में भी यह मान लिया गया था कि समाचार पत्रों में प्रकाशन की अनिवार्यता को समाप्त करने वाली धारा 3 की उपधारा (2) में संशोधन भी पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू था और इसी आधार पर उच्च न्यायालय ने कार्यवाही की धारा 3 की उपधारा (2) में यह संशोधन पूर्वव्यापी नहीं था, यह तथ्य इस न्यायालय में इस अपील की सुनवाई के दौरान ही ध्यान में आया और, चूंकि यह विशुद्ध रूप से विधि का प्रश्न था, हमने इस आधार पर मामले पर बहस करने की अनुमति दी, हालांकि ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय में, इस बात को न समझने के कारण कि यह संशोधन पूर्वव्यापी नहीं था, विचारण न्यायालय का यह निर्णय कि अधिनियम की धारा 3 के तहत जारी 14 नवंबर, 1951 की अधिसूचना के आधार पर प्रतिवादी संख्या 1 की संपत्ति बिहार राज्य में निहित हो गई थी, अपील की सुनवाई के दौरान चुनौती नहीं दी गई थी। तथ्यात्मक रूप से, पक्षों के कथनों से यह प्रतीत होता है कि वादी और प्रतिवादी संख्या 1 दोनों की ओर से यह तर्क

दिया गया था कि 6 नवंबर, 1951 की अधिसूचना केवल 14 नवंबर, 1951 को राजपत्र में प्रकाशित हुई थी, लेकिन पक्षों की जानकारी के अनुसार किसी भी समाचार पत्र में प्रकाशित नहीं हुई थी। मामले में दिए गए तथ्यों को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए और विचारण न्यायालय में उसी आधार पर मुकदमा लड़ा गया, इसलिए हमने यह उचित समझा कि उच्च न्यायालय द्वारा अपने फैसले में उल्लिखित प्रतिवादी संख्या 1 की चूक को प्रतिवादी संख्या 1 को कानून की सही व्याख्या के आधार पर अपना मामला पेश करने से नहीं रोका जाना चाहिए।

तथ्यात्मक पहलू पर आते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि वादी ने वादपत्र में विशेष रूप से यह निवेदन किया था कि यद्यपि उत्तरदाता संख्या 1 की संपत्ति उत्तरदाता संख्या 2 को हस्तांतरित करने संबंधी अधिसूचना 14 नवंबर, 1951 के आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित हुई थी, फिर भी इसे न तो दो समाचार पत्रों में प्रकाशित किया गया था और न ही इसकी एक प्रति उत्तरदाता संख्या 1 को भेजी गई थी, जैसा कि बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 3 (2) के अनुसार आवश्यक था। यह निवेदन वादपत्र के अनुच्छेद 13 के खंड (क) में निहित था। प्रतिवादी संख्या 1 ने अपने लिखित बयान के अनुच्छेद 9 में यह भी कहा कि "जहां तक इस उत्तरदाता को जानकारी है, बिहार राज्य के किसी भी समाचार पत्र में कोई अधिसूचना प्रकाशित नहीं की गई थी और न ही बिहार भूमि सुधार अधिनियम की धारा 3 (2) के तहत उसे पंजीकृत डाक द्वारा कोई नोटिस भेजा गया था।" उत्तरदाता संख्या 2 ने अपने लिखित बयान के अनुच्छेद 11 में वाद के अनुच्छेद 13 और 14 के उत्तर में अपना पक्ष रखा और ऐसा करते हुए सामान्य शब्दों में कहा कि वास्तव में कानून के सभी प्रावधानों का अनुपालन किया गया था। आगे की दलील यह थी कि "यद्यपि खंड (ख) और (ग) में उल्लिखित तथ्य सही हैं, लेकिन खंड (क) में लगाया गया आरोप पूरी तरह सही नहीं है। यह सच नहीं है कि अधिसूचना की प्रति पहली बार पंजीकृत डाक से भेजी गई थी, जैसा कि इस कंडिका में उल्लेख किया गया है।" प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से यह दलील दर्शाती है कि

प्रतिवादी संख्या 2 ने समाचार पत्रों में अधिसूचना के प्रकाशन के संबंध में कोई विशिष्ट दलील नहीं दी, जिसका उल्लेख वादपत्र के कंडिका 13 में किया गया था। विशिष्ट दलील केवल प्रतिवादी संख्या 1 को अधिसूचना की प्रति भेजे जाने के संबंध में थी। लिखित बयान के कंडिका 13 में भी, केवल सामान्य शब्दों में यह दलील दी गई थी कि कानून के प्रावधानों के अनुसार वैध अधिसूचना और प्रकाशन हुआ था। जहां तक वादी और प्रतिवादी संख्या 1 का संबंध है, वे केवल समाचार पत्रों में प्रकाशन की अनभिज्ञता का दावा कर सकते थे और प्रकाशन न होने के नकारात्मक तथ्य का कोई ठोस सबूत नहीं दे सके। यदि यह तथ्य सत्य होता तो प्रतिवादी संख्या 2 अकेले ही विशेष रूप से यह दलील दे सकता था कि अधिसूचना दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशित हुई थी; लेकिन प्रतिवादी संख्या 2 ऐसा करने में विफल रहा।

इस बिंदु पर साक्ष्य केवल प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से ही प्रस्तुत किए जा सके, जिससे समाचार पत्रों में वास्तविक प्रकाशन सिद्ध हो सके। जहाँ तक प्रतिवादी संख्या 1 का संबंध है, उन्होंने अपने लिखित बयान में अपने कथन का समर्थन किया, जब गवाह के रूप में उन्होंने कहा कि उन्हें 1951 में किसी भी समाचार पत्र में अपनी संपत्ति के हस्तांतरण की अधिसूचना के प्रकाशन की जानकारी नहीं थी। प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से, ऐसा प्रतीत होता है कि समाचार पत्रों में इस प्रकाशन को सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया गया। केवल एक गवाह, राधिका प्रसाद, जो अतिरिक्त समाहर्ता के कार्यालय में कार्यरत थीं, को अधिसूचना से संबंधित कार्यवाही के तरीके को दर्शाने के लिए प्रस्तुत किया गया। मुख्य गवाही में, उन्होंने केवल यही पुख्ता सबूत दिया कि 14 नवंबर, 1951 को राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना से संबंधित नोटिस नजरात के चपरासी के माध्यम से उत्तरदाता नंबर 1 को भेजा गया था। उन्होंने यह नहीं बताया कि यह किसी समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ था। हालांकि, जिरह के दौरान, जब प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया कि समाचार पत्रों में इसका प्रकाशन नहीं हुआ था, तो

गवाह ने कहा कि वह अधिसूचना 'बिहार संदेश' और 'बिहार समाचार' में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने उस समय भी यह नहीं बताया कि यह इन दोनों समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशित हुई थी। इसके अलावा, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें न तो व्यक्तिगत रूप से कोई जानकारी थी और न ही अभिलेखों से प्राप्त कोई ऐसी जानकारी थी जिस पर भरोसा किया जा सके। उन्होंने स्वीकार किया कि ऑर्डर शीट में समाचार पत्रों में अधिसूचना के प्रकाशन के संबंध में कोई उल्लेख नहीं था, और उनके कार्यालय में समाचार पत्रों की कोई कटिंग भी नहीं थी। उनके कार्यालय से समाचार पत्रों को कोई भुगतान भी नहीं किया गया था। उनके आगे के उत्तर से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें उक्त समाचार पत्रों में अधिसूचना के प्रकाशन के संबंध में सरकार से प्राप्त एक पत्र से जानकारी मिली थी। वह पत्र भी प्रस्तुत नहीं किया गया है और गवाह ने उस पत्र की पूरी सामग्री नहीं बताई है। उन्होंने केवल इतना कहा कि सरकार का पत्र उन दो समाचार पत्रों में अधिसूचना के प्रकाशन के संबंध में था। पत्र की इस सामग्री से यह स्पष्ट नहीं होता कि पत्र केवल प्रकाशन के लिए सरकार का निर्देश था, या उसमें ऐसी कोई सामग्री थी जिससे यह पता चलता हो कि अधिसूचना पहले ही इन समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुकी थी। इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जब यह मामला पिछली तारीख को इस न्यायालय के समक्ष आया, तो न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 2 को समाचार पत्रों के अंक प्रस्तुत करने का अवसर देने का निर्णय लिया। पर्याप्त अवसर दिए जाने के बावजूद, प्रतिवादी संख्या 2 का प्रतिनिधित्व करने के लिए हमारे समक्ष उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने उन्हें प्रस्तुत करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। समाचार पत्रों के उन अंकों को प्रस्तुत करने में विफलता, जिनमें अधिसूचना प्रकाशित हो सकती थी, केवल इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि वास्तव में ऐसा कोई प्रकाशन नहीं हुआ था, विशेष रूप से ऊपर उल्लिखित साक्ष्यों की स्थिति में। इन परिस्थितियों में, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि वास्तव में, अधिनियम की धारा 3 (2) के अनुसार, दो समाचार पत्रों के दो अंकों में कोई प्रकाशन नहीं हुआ था, जब अधिसूचना 14 नवंबर, 1951 को आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित

हुई थी। इस चूक के कारण धारा 3 (2) के अनिवार्य प्रावधान का पालन नहीं हुआ, जिसके अनुसार कम से कम दो समाचार पत्रों के दो अंकों में प्रकाशन आवश्यक था। परिणामस्वरूप, अधिनियम की धारा 4 (क) उस समय लागू नहीं हुई और इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि प्रतिवादी संख्या 1 उस समय भी स्वामी बना रहा और इस अधिसूचना द्वारा संपत्ति में उसके अधिकारों से वंचित नहीं किया गया। इस मामले के अभिलेख में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला जिससे यह पता चले कि वह अधिसूचना बाद में भी किसी समाचार पत्र में प्रकाशित हुई थी; लेकिन विचारण न्यायालय में, मामला प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा स्वयं स्वीकार किए जाने के आधार पर चला कि उसे 13 जून, 1952 को बेदखल कर दिया गया था और उसी तिथि से उसके स्वामित्व अधिकार समाप्त हो गए थे। परिणामस्वरूप, उन्हें 12 अप्रैल, 1952 को वादी को पट्टा देने का पूरा अधिकार था और उस पट्टे के तहत अधिकारों का प्रयोग वादी द्वारा उस अवधि के दौरान किया गया था जब प्रतिवादी संख्या 1 अभी भी मालिक था। इन परिस्थितियों में, प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा वादी से पट्टे की राशि का सही ढंग से वसूली करना उचित था। प्रतिवादी संख्या 2, जिसके अधिकार 13 जून, 1952 तक निहित नहीं थे, को वर्ष 1952 के लिए पट्टे की राशि वसूलने का कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि जब तक प्रतिवादी संख्या 2 को अधिकार निहित हुए, तब तक उस वर्ष के लिए बीड़ी के पत्तों का संग्रह वादी द्वारा पूरा किया जा चुका था। इन परिस्थितियों में, केवल इसी आधार पर, प्रतिवादी संख्या 1 उस 22,500 रुपये की राशि के लिए डिक्री में सफल होने का हकदार है, जिसके भुगतान के लिए वह उत्तरदायी नहीं था, इसलिए उसके विरुद्ध डिक्री को रद्द किया जाना चाहिए। इसके बजाय, इस राशि के लिए डिक्री प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध पारित की जानी चाहिए, क्योंकि 22,500 रुपये की राशि...प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा वादी से प्राप्त 22,500/- रुपये कानून के तहत उचित नहीं थे, क्योंकि वर्ष 1952 के लिए पट्टेदार के अधिकार प्रतिवादी संख्या 2 में निहित नहीं थे।

परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय बहाल किया जाता है। इस मामले की परिस्थितियों में, हम अपील के दोनों पक्षों को अपने-अपने खर्चों का वहन करने का निर्देश देते हैं।

वाई.पी. अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।